45. पवित्रता, संतोष और शांति

1. *Great completion must appear as if inadequate:*
   thus it becomes infinite in its effect.
   Great abundance must appear as if flowing:
   thus it becomes inexhaustible in its effect.
   Great straightness must appear as if crooked.
   Great talent must appear as if foolish.

2. *Movement overcomes cold.*
   Stillness overcomes heat.
   Purity and stillness are the world's measuring gauge.

अनुवाद

1. *महान पूर्णता अवश्य ही ऐसी दिखती है मानो अपूर्ण हो,*
   इस तरह इसका प्रभाव अनंत होता है।
   महान प्रचुरता अवश्य ही बहती हुई सी जान पड़ती है,
   इस तरह इसका प्रभाव अक्षुण्ण होता है।
   सर्वाधिक सीधापन गांठदार दिखता है।
   सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा मूढ़ता जान पड़ती है।

2. *गति से ठंडक दूर होती है,*
   अगति से गरमी दूर होती है।
   पवित्रता और निश्चलता संसार को मापने की कसौटी है।

भावार्थ—1. उच्चतम पूर्णता आत्मसंतोष है, वह ठीक अपूर्ण दिखती है, किंतु उसका प्रभाव अनंत होता है। उच्चतम अधिकता जीवन में सद्‌गुणों का प्रवाह है, वह बहती हुई दिखती है; परंतु उसका स्थायी प्रभाव अखंड स्थिति है। अत्यंत सरलता गांठदार दिखती है और उच्चतम प्रतिभा मूर्खता लगती है।

2. परिश्रम करने से शरीर की शीतलता दूर होती है और विश्राम से गरमी दूर होती है। अंतर-बाहर की शुद्धि और अविचलता वह कसौटी है जिससे संसार की परख की जा सकती है।

भाष्य—महान पूर्णता अवश्य ही ऐसी दिखती है मानो अपूर्ण हो, इस तरह इसका प्रभाव अनंत होता है। महान पूर्णता पूर्ण संतोष है। अप्राप्ति की आशा न करना और प्राप्ति में तृष्णा न करना, संतोष है। चाहने से कुछ नहीं मिलता, अपितु परिश्रम और प्रारब्ध से मिलता है। जो परिश्रम और प्रारब्ध से मिलता है, वह सब लौकिक ही होता है। लौकिक वस्तुओं की आवश्यकता थोड़ी है। जीवन का निर्वाह थोड़ी ही वस्तुओं से होता है, और वह मिलती रहेगी। इच्छाहीनता एवं संतोष सच्ची बादशाहत है। धर्म-प्रचार में भी संतोष सुखद है। आज तक कोई महापुरुष दुनिया भर को नहीं जगा सका। अतएव धर्म-प्रचार करना ठीक है, परंतु उसमें तृष्णा त्यागकर संतोष रखना ही समझदारी है। परम संतोष धर्म है, फिर स्वयं संतोष छोड़कर धर्म-प्रचार का क्या मतलब!

जो परम संतोष में जी रहा है, उसकी ही महान पूर्णता है, परंतु दूसरों को वह अपूर्ण दिखती है। मोटी बुद्धि वालों को उसकी संपन्नता दिखती है जिसके पास लौकिक ऐश्वर्य है, क्योंकि वह आंखों से दिखनेवाला है। कोई मनुष्य का मन पूर्ण संतुष्ट है, अगाध अमृत में डूबा है, यह तथ्य आंखों से दिखने वाला नहीं है। इसलिए ग्रंथकार कहते हैं कि महान पूर्णता अपूर्ण दिखती है। लेकिन संतोष का फल अनंत है। संतुष्ट व्यक्ति कभी दुखी नहीं होता।

महान प्रचुरता अवश्य ही बहती हुई जान पड़ती है, इस तरह इसका प्रभाव अक्षुण्ण होता है। दया, शील, क्षमा, भक्ति, समता आदि सद्‌गुण जिसके जीवन में पूर्ण हैं, उसके जीवन में महान प्रचुरता है, बहुत बड़ा धन है, परंतु यह बहता हुआ दिखता है। दूसरे लोगों को यह पकड़ में नहीं आता। सद्‌गुण संपन्न व्यक्ति अपने में परमानंद में रहता है, परंतु दूसरा इसका अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि यह आंतरिक है।

प्राप्त वस्तुओं को लोगों की सेवा में खर्च करते रहना, यही लौकिक वस्तुओं की अधिकता की सार्थकता है, लेकिन यह लोगों को बहती हुई दिखती है। आयी हुई वस्तुओं को खर्च कर देंगे तो अपने पास प्रचुरता कहां रहेगी, ऐसा भ्रम होता है। परंतु प्राप्त वस्तुओं को लोगों की सेवा में खर्च करना ही उसकी प्रचुरता का रहस्य है। कुआं में से पानी निकालने से उसमें ताजा पानी निकलता रहता है। कमरे की सब तरफ की खिड़कियां खोल देने से हवा आती और जाती है और कमरा स्वच्छ रहता है। जहां केवल जमा करने का प्रयास है वहां विनाश एवं पतन रखा है और जहां आनेवाली वस्तुओं को सेवा में लगाते रहने की उदारता है, वहां सदैव प्रचुरता बनी रहेगी। इसका फल स्थिर सुख-शांति है।

सर्वाधिक सीधापन गांठदार दिखता है। अंतर-बाहर संतुष्ट व्यक्ति पूर्ण सरल होता है। किंतु वह आत्मसंतुष्ट होने से अंतर्मुख होता है। अंतर्मुख व्यक्ति

में चपलता नहीं होती, अपितु स्थिरता होती है। अतएव दूसरे उसे देखकर उसमें अहंकार होने का भ्रम करते हैं। उनको लगता है कि यह मनुष्य गांठदार है, अहंकारी है। इसीलिए उच्चतम संतों को समझना कठिन हुआ है। अच्छे-अच्छे विद्वान और बुद्धिमान लोग भी जीवन्मुक्त संतों को गाली दिये हैं। स्वयं अपना मन सरल हुए बिना हम दूसरे की सरलता कैसे समझ पायेंगे।

सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा मूढ़ता जान पड़ती है। तत्त्वग्राहिणी शक्ति, तत्त्वधारणा शक्ति, कल्पना शक्ति और अभिव्यक्ति शक्ति, इन चारों का जिसके जीवन में समुच्चय है उसकी प्रतिभा विशाल होती है। देखकर, सुनकर, पढ़कर और विचारकर चारों तरफ से ज्ञान की सच्चाई समझ लेना तत्त्वग्राहिणी शक्ति है। समझे हुए एवं जाने हुए को चित्त में धारण कर लेना, उनका विस्मरण न होना तत्त्वधारणा शक्ति है। प्राप्त ज्ञान पर विचार करके उसके अंग-उपांगों का मन में विस्तार कर लेना कल्पना शक्ति है। और प्राप्त ज्ञान वाणी से स्पष्ट कह देना या लिख देना अभिव्यक्ति शक्ति है। इन चारों शक्तियों से संपन्न व्यक्ति प्रतिभावान है।

"तात्कालिक बातों का ज्ञान हो जाना बुद्धि का लक्षण है, आगे के विषयों का सही अनुमान लगा लेना मति का लक्षण है और नये-नये अनुभव जगना प्रतिभा कहलाती है।"[1]

आध्यात्मिक दृष्टि से आंतर-ज्ञान प्रतिभा है। प्रति = पीछे, लौट आना। भा = ज्ञान—बाहर से लौटकर आंतर-ज्ञान में डूब जाना, आत्मलीन हो जाना, निर्विकल्पबोध में निमग्न रहना प्रतिभा है। भा का अर्थ है—प्रकाश। प्रति का अर्थ है—लौटना; जैसे प्रतिक्रिया, प्रतिबल, प्रतिबिंब, प्रतिध्वनि आदि। आंतर ज्ञान की तरफ लौट आना प्रतिभा है। अहंकार-कामना-शून्य आत्मलीनता सच्ची प्रतिभा है। यही सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा है। रजोगुणी आदमी को यह प्रतिभा मूढ़ता लगती है। रजोगुणी मनुष्य को जड़भरत मूढ़ ही लगेगा। किंतु सच्ची प्रतिभा, सर्वोच्च प्रतिभा आत्मलीनता ही है।

गति से ठंडक दूर होती है, अगति से गरमी दूर होती है। यदि मनुष्य को ठंडक लगी है और वह दौड़े तो ठंडक दूर हो जायेगी। यदि गरमी लगी है, और स्थिर हो जाये तो गरमी दूर हो जायेगी। सेवा के लिए गति चाहिए और शांति के लिए अगति चाहिए। सेवा में दौड़ना जरूरी है और शांति के लिए स्थिरता जरूरी है।

हरक्षण कर्मशील रहना अनुचित है और हर समय निष्क्रिय रहना अनुचित है। कर्मों के पीछे हर क्षण भागने वाला शांति नहीं पायेगा; और हाथ-पैर

---

1. **बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागामिगोचरा।**
बुद्धिर्नवनव उन्मेषशालिनी प्रतिभोच्यते॥

बटोकर हरक्षण केवल बैठे रहने वाले का शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ेगा ही, मन भी शांति नहीं पायेगा। काम के समय काम करे, और समय-समय बैठकर ध्यानाभ्यास करे। स्थिर होकर बैठे और मन को शिथिल कर निर्विकल्प दशा में स्थित होने का अभ्यास करे। गति से जड़ता दूर होती है और अगति से उद्वेग दूर होता है। यही गति और अगति की सार्थकता है।

पवित्रता और निश्चलता संसार को मापने की कसौटी है। जिसका जीवन पूर्ण पवित्र है और मन शांत है, वह संसार एवं जीवन के व्यवहार में मिले हुए प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों से होने वाले हित-अहित का सही मूल्यांकन कर सकता है। जीवन की पवित्रता और निश्चलता स्थिर बुद्धि के लक्षण हैं। स्वच्छ दर्पण में जैसे प्रतिबिंब साफ दिखता है, वैसे पवित्र और शांति बुद्धि से हर सच्चाई का स्पष्ट बोध होता है।

सच्चा ज्ञान एवं वस्तु का यथार्थ बोध उसको होता है, जो सब तरफ से निष्पक्ष, निर्मल और सहज है। बहुत बुद्धिमान पक्षपात के कारण सही निर्णय नहीं कर पाता। धर्म के नाम पर बड़ी-बड़ी मलिनताएं हैं। अवतारवाद, पैंगबरवाद, अलौकिकता की दादागीरी आदि अपवित्र मन का विस्तार है जिस पर धर्म का स्वर्णिम बर्क लगा हुआ है। धर्म के नाम पर सदाचारी आदमी भी वंचक और भोले होते हैं। जो निर्मल कांच की तरह पारदर्शी है वही सत्य समझ और कह सकता है।

46. संतोष से ही संतोष मिलता है

1. *When DAO rules on earth*
   one uses the racehorses to pull dung carts.
   When DAO has been lost on earth
   warhorses are raised on the green fields.

2. *There is no greater sin than many desires.*
   There is no greater evil than not to know sufficiency.
   There is no greater defect than wanting to possess.
   Therefore: the sufficiency of sufficiency is lasting sufficiency.

अनुवाद

1. *जब पृथ्वी पर ताओ का शासन होता है,*
   तब तीव्रगामी घोड़े खाद डालने वाली गाड़ी खींचते हैं।
   जब पृथ्वी से ताओ का लोप हो जाता है,
   तब हरे-भरे खेतों में युद्ध के घोड़े पाले-पोषे जाते हैं।

2. *बहुत इच्छाओं से भरा होना,*
   इससे बढ़कर और कोई पाप नहीं।
   संतोष के अभाव से बड़ा और कोई अभिशाप नहीं।
   स्वामित्व की इच्छा से बढ़कर और कोई दोष नहीं।
   अतएव,
   संतोष से संतुष्ट हो जाना ही परम संतुष्टि है।

भावार्थ—1. जब देश में विश्व-व्यापी नियम के अनुसार शासन होता है, तब तेज घोड़े खाद ढोने वाली गाड़ी खींचते हैं। जब देश से विश्व-नियम का उल्लंघन कर दिया जाता है, तब हरे-भरे खेतों में युद्ध के घोड़े पाले-पोषे जाते हैं।

2. बहुत इच्छाओं से भरे होने से बढ़कर कोई पाप नहीं है। असंतोष सबसे बड़ी बुराई है। मालिक बनने की इच्छा सबसे बड़ा दोष है। इसलिए संतोष से तृप्त रहना परम संतुष्टि है।

भाष्य—जब पृथ्वी पर ताओ का शासन होता है, तब तीव्रगामी घोड़े खाद डालने वाली गाड़ी खींचते हैं। जब पृथ्वी से ताओ का लोप हो जाता है, तब हरे-भरे खेतों में युद्ध के घोड़े पाले-पोषे जाते हैं। ताओ है जड़-चेतन-

सृष्टि में व्याप्त शाश्वत नियम। प्राणियों में यह नित्य नियम है कि वे चोट नहीं चाहते, मृत्यु नहीं चाहते, अतएव दूसरों को चोट पहुंचाना और मार डालना विश्व मानवीय नियम के विरुद्ध है। जब तक अहिंसा रूपी विश्वनियम का आदर रहेगा, तब तक युद्ध नहीं होगा। ऐसी स्थिति में घोड़े रचनात्मक काम में लगेंगे, खाद की गाड़ी खींचेंगे और खेती अच्छी होगी। अन्न अच्छा होगा। जनता धन-धान्य संपन्न होगी। जब हिंसा की भावना जगेगी, मानवीय नियम का त्याग होगा, तब घोड़े युद्ध में काम आयेंगे और अन्न पैदा करने वाले खेतों में युद्ध के घोड़े पाले जायेंगे। खेती का नाश होगा। प्रजा दरिद्र होगी। भुखमरी फैलेगी। कोई मानवतावादी मनुष्य किसी प्रकार का युद्ध, लड़ाई, विवाद, कलह स्वीकार नहीं करेगा। चाहे अस्त्र-शस्त्र की लड़ाई हो और चाहे परिवार, समाज तथा किसी समूह के कलह की लड़ाई, सदैव मनुष्य की सुख-शान्ति की विरोधी है।

बहुत इच्छाओं से भरा होना, इससे बढ़कर और कोई पाप नहीं है। इच्छाओं से भरा मन नरक है। इच्छाओं की आग में मनुष्य जलता है। विवेक-विरुद्ध इच्छाओं के कारण ही संसार में सारे पाप होते हैं। चोरी, हत्या, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, विश्वासघात सारे पापों के मूल में है प्रदूषित इच्छाएं।

संतोष के अभाव से बड़ा और कोई अभिशाप नहीं है। भयंकर बुराई है असंतोष। पूंजीपति भी असंतोष की भट्टी में जलता है। धर्म-प्रचार की तृष्णा बनाकर कितने धर्मगुरु इस संबंध में असंतोष में जलते रहते हैं। पद, प्रतिष्ठा, सम्मान, संतान आदि में असंतोष रखकर पीड़ा के सिवा क्या है? समस्त लौकिक उपलब्धियों में तृष्णा आकर बैठ जाती है, इसलिए मनुष्य संतोष नहीं पाता। संसार अपूर्ण जानकर रुकने से ही संतोष मिलेगा।

स्वामित्व की इच्छा से बढ़कर और कोई दोष नहीं है। मैं घर-परिवार, धन-दौलत का मालिक रहूं, मठ, मंदिर, समाज का मालिक रहूं, या किसी भी समूह और संपत्ति का मालिक रहूं, यह बुद्धि मनुष्य को भटकाने वाली है। मालिक बनने की चेष्टा दोष ही नहीं, महापाप है। यदि परिवार, समाज, कंपनी, पार्टी आदि की सेवा करने का दायित्व मिले, तो सेवक बनकर उनकी सेवा करना चाहिए; मालिक बनकर नहीं।

संतोष से संतुष्ट हो जाना ही परमसंतुष्टि है। वस्तुओं से, पद से, सम्मान से, अनुगामियों से तथा अन्य लौकिक उपलब्धियों से संतोष नहीं मिलेगा, अपितु "Sufficiency of sufficiency is lasting sufficiency." पर्याप्त से पर्याप्त अंतिम पर्याप्त है। संतोष से संतोष अंतिम संतोष है। संतोष से ही संतोष मिलेगा, संतोष के लिए दूसरा रास्ता नहीं है।

47. स्वर्ग भीतर है

1. *Without going outdoors*
   one knows the world.
   Without looking out of the window
   one sees the DAO of Heaven.
   The further out one goes
   the lesser one's knowledge becomes.

2. *Therefore, the Man of Calling does not need to go*
   and yet he knows everything.
   He does not need to see
   and yet is he clear.
   He does not need to do anything
   and yet he completes.

अनुवाद

1. *दरवाजे से बाहर गये बिना,*
   वह संसार को जानता है।
   खिड़की से बाहर देखे बिना,
   उसे स्वर्ग का ताओ दिखता है।
   बाहर जितना ही जाओगे,
   ज्ञान उतना ही कम होता जायेगा।

2. *अतएव,*
   संत को बाहर जाने की आवश्यकता नहीं,
   यद्यपि वह सब कुछ जानता है।
   उसे देखने की आवश्यकता नहीं,
   यद्यपि उसे सब कुछ स्पष्ट है।
   उसे कुछ करने की आवश्यकता नहीं,
   यद्यपि उसका सब पूरा है।

भावार्थ—1. अंतर्मुख संत बहिर्मुख हुए बिना संसार को जानते हैं। खिड़की से बाहर झांके बिना वे सुख के नियम को देखते हैं। जितना बहिर्मुख होओगे, आंतस्ज्ञान कम होता जायेगा।

2. इसलिए संत को बहिर्मुख होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे सबकुछ जानते हैं। उन्हें देखने की जरूरत नहीं, क्योंकि उनके सामने सबकुछ साफ है। उन्हें कुछ करना शेष नहीं, क्योंकि उनका सब कुछ पूर्ण है।

भाष्य—दरवाजे से बाहर गये बिना, वह संसार को जानता है। खिड़की से बाहर देखे बिना, उसे स्वर्ग का ताओ दिखता है। दरवाजे तथा खिड़कियां हैं मन तथा इंद्रियां। संत को इन्हें केवल देह-निर्वाह के लिए ही खोलना पड़ता है। उन्हें अब इनसे कुछ देखना-सुनना और जानना नहीं रह गया है। वे समझते हैं कि संसार असार है। उसमें उनका कोई आकर्षण शेष ही नहीं है। 'स्वर्ग का ताओ' है सुख पाने का नियम। वह है निष्कामता और निर्मानता। वह उसे अपनी अंतर्दृष्टि से निरंतर दिखता है। अविचल सुख आत्मसंतोष है। यही सच्चा स्वर्ग है और यह पूर्ण निष्काम और निर्मान होने से मिलता है। इस तथ्य को संत अपने विवेक से समझते हैं। इसलिए उन्हें स्वर्ग का द्वार बाहर नहीं खोजना पड़ता है।

बाहर जितना ही जाओगे, ज्ञान उतना ही कम होता जायेगा। अपने मन और इंद्रियों को जितना अनात्म पदार्थों में लगाओगे, उन्हें जितना बहिर्मुख करोगे आंतस्ज्ञान कम होता जायेगा। आंतस्ज्ञान है स्वरूपस्थिति, पूर्ण आत्मसंतोष में निरंतर जीना। मन के सारे विकार, इच्छा-वासना, अहंता-ममता का ज्ञानाग्नि में पूर्ण जल जाना और इसके परिणाम में निरंतर परम शांतिरूपी अगाध अमृत में निमग्न रहना सच्चा ज्ञान है। यह बहिर्मुख होने से घटता है।

अतएव, संत को बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, यद्यपि वह सब कुछ जानता है। संत को बहिर्मुख होने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि संसार सारहीन तो है ही, दुखपूर्ण है; और अंतर्मुखता परमानंद है। इस तथ्य का पूर्ण साक्षात्कार हो जाने पर बाहर ललचाने की गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

उसे देखने की आवश्यकता नहीं, यद्यपि उसे सब कुछ स्पष्ट है। बाहर देख-देखकर केवल मन का उपद्रव ही इकट्ठा किया जाता है। संत को सब समय साफ दिखता है कि मन-इंद्रियों से प्रतीतमान सब कुछ अनात्म, अनित्य और दुखपूर्ण है और मन-इंद्रियों का व्यापार समेटकर आत्मसंतोष परमानंद है।

उसे कुछ करने की आवश्यकता नहीं, यद्यपि उसका सब पूरा है। जो पूर्णकाम, आप्तकाम, प्राप्तकाम, निष्काम, तृप्तकाम एवं आत्मसंतुष्ट है, उसका सबकुछ पूरा है, फिर उसे अब क्या पाना शेष है, जिसके लिए कुछ

करना पड़े? अतएव वह केवल शरीर-निर्वाह अनासक्त होकर लेता है और आत्मसंतोष में सब समय निमग्न रहता है।

बड़े-बड़े धनपतियों, नेताओं, वैज्ञानिकों तथा समस्त लौकिक उपलब्धि वालों का सर्वस्व बाहर है, किंतु संतों का सर्वस्व भीतर है। बाहर वाला मन की पीड़ा को समाप्त नहीं कर सकता, भीतर का धन ही समाप्त कर सकता है। सबको जानने वाले को जानकर जब मनुष्य रुक जाता है, तब कृतार्थ हो जाता है। सबको जानने वाला मैं हूं। मैं में रुक जानेवाला परमानंद में स्थित हो जाता है।

"बिना कुछ किये उसका सब पूरा कैसे होगा? करने से पूरा होता है, न करने से तो कुछ नहीं होता।" ऐसा प्रश्न बड़े-बड़े विद्वानों के मन में बना रहता है; क्योंकि वे साधक नहीं हैं। वे कभी न करने की स्थिति में रहे ही नहीं हैं। वस्तुत: वासना-हीन मन न करने की स्थिति है। और इसी में पूर्ण शांति मिलती है जिसे पूरा होना कहा जा सकता है। करने से सांसारिक वस्तुएं मिलती हैं जो सदैव अपूर्ण लगती हैं। जब मन क्रिया-शून्य होकर पूर्ण शांत हो जाता है, तब अविचल शांति का साम्राज्य मिलता है, जो पूर्ण है।

48. निर्विकल्प समाधि सर्वोच्च साम्राज्य है

1. *Whosoever practices learning increases daily.*
   Whosoever practices DAO decreases daily.
   He decreases and decreases
   until at last he arrives at non-action.
   In non-action nothing remains not done.

2. *The realm can only be attained*
   if one remains free of busy-ness.
   The busy are not fit
   to attain the realm.

अनुवाद

1. *जो पांडित्य का अभ्यास करता है, वह प्रतिदिन बढ़ता है।*
   जो ताओ का अभ्यास करता है वह प्रतिदिन घटता है।
   वह घटता है और घटता है,
   जब तक कि वह क्रिया-शून्यता को उपलब्ध न हो जाये।
   क्रिया-शून्यता में कुछ भी करना शेष नहीं बचता।

2. *यह साम्राज्य तभी मिलता है,*
   जब वह कर्म-प्रपंच से मुक्त होता है।
   कर्मशील उस साम्राज्य को पाने का अधिकारी नहीं।

भावार्थ—1. जो मनुष्य विद्वता का अभ्यास करता है, वह प्रतिदिन संसार की जानकारियों से संपन्न होता जाता है और ज्ञान में बढ़ता है, परंतु जो जीवन के आध्यात्मिक नियम का अभ्यास करता है, वह प्रतिदिन सांसारिक ज्ञान को भूलता है और उसका ज्ञान घटता जाता है। घटते-घटते तब तक घटता है जब तक क्रियाशून्य न हो जाये। फिर क्रियाशून्य में कुछ भी करना नहीं रहता।

2. उपर्युक्त साम्राज्य तभी प्राप्त होता है जब साधक कर्म-प्रपंच से सर्वथा मुक्त हो जाता है। कर्म-प्रपंच में लीन मनुष्य इस राज्य में पहुंचने का अधिकारी नहीं है।

भाष्य—जो पांडित्य का अभ्यास करता है, वह प्रतिदिन बढ़ता है। व्याकरण, भाषाविज्ञान, भूगोल, शरीरविज्ञान, पदार्थविज्ञान, रसायनविज्ञान, प्राणिविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, चिकित्साविज्ञान, विधिविज्ञान, निधिविज्ञान, पांडित्य का, विद्वता का, पढ़ाई का, लर्निंग का विशाल आयाम है। एक मनुष्य पूरे जीवन में भी संसार के पूरे ज्ञान का शतांश भी अध्ययन नहीं कर सकता। परंतु जो मनुष्य पढ़ता है वह अपनी पढ़ाई में दिन-ब-दिन आगे बढ़ता जाता है। इन सबकी पढ़ाई के लिए पाठशालाएं, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय खुले हैं। इन पढ़ाइयों का सांसारिक उन्नति में अपना योगदान है। लोगों को यथाशक्ति पढ़ना चाहिए और लौकिक उन्नति का काम करना चाहिए। शरीर-निर्वाह, परिवार-पोषण और लोक-उन्नति में पढ़ाई आवश्यक है।

याद रहे, ये सांसारिक पढ़ाइयां मन के दुख को नहीं दूर कर सकतीं, अपितु सावधान न रहे तो ये दुख को बढ़ायेंगी और जीवन के अंत में ये थोथी ठहरेंगी। जब इन विद्याओं से जीवन में शांति नहीं मिलती, तब अंत में क्या शांति मिलेगी?

नारद मानसिक ताप से पीड़ित होकर महर्षि सनत्कुमार के पास पहुंचे और उन्होंने उनसे निवदेन किया—''भगवन! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या (निरुक्त), ब्रह्मविद्या, भूतविद्या (भौतिकी, रसायन और प्राणिशास्त्र), क्षत्रविद्या (शस्त्रविद्या), नक्षत्रविद्या (ज्योतिष), सर्पविद्या (विषज्ञान), देवजनविद्या (ललितकला), नृत्य-संगीत आदि सब पढ़ डाला है। भगवन! मैं इतना सब पढ़कर केवल मंत्र-वेत्ता हूं, शास्त्रों का पंडित हुआ हूं। आत्मवेत्ता नहीं हूं। मैंने आप-जैसे महापुरुषों से सुना है ''तरति शोकम् आत्मवित्।'' आत्मा को जान लेने वाला शोक से पार हो जाता है। मैं शोक-सागर में डूबा रहता हूं। भगवन! मुझे शोक से पार लगा दीजिए।''[1]

जो ताओ का अभ्यास करता है, वह प्रतिदिन घटता है। ताओ विश्वव्यापी नियम है। जैसे संसार में विद्याएं बहुत हैं, परंतु सभी विद्याओं का समुच्चय एकवचन में 'विद्या' कहा जाता है, वैसे विश्व की विविध प्राकृतिक शक्तियों के नियम असंख्य हैं, परंतु सभी नियमों का समुच्चय एकवचन में 'नियम' कहा जाता है। पृथ्वी के घूमने का नियम भिन्न है, पानी बरसने का नियम भिन्न है, पौधों के उगने का नियम भिन्न है, शरीर के भीतर पाचन-प्रणाली का नियम भिन्न है। इसी प्रकार मन का पूर्ण निर्मल, प्रशांत और स्थिर आनंदित रहने का नियम भिन्न है।

---

1. **छांदोग्य उपनिषद्, सातवां अध्याय।**

यहां ताओ के अभ्यास का अर्थ है उस नियम के अनुसार मन और इंद्रियों का आचरण करना जिससे स्थिर शांति का जीवन में साम्राज्य हो। वह नियम है निरंतर अंतर्मुख होने का अभ्यास। ग्रंथकार कहते हैं, **जो ताओ का अभ्यास करता है, वह प्रतिदिन घटता है।** इसका अर्थ है कि जो आत्म-अभिमुख होता जाता है, अंतर्मुख होता जाता है वह निरंतर संसार को अपने चित्त से उतारता जाता है। घटते जाने का अर्थ है संसार को भूलते जाना।

ताओ के अनुसार चलने वाला अपना मन संसार के पदार्थों में नहीं लगाता, किंतु आत्मा में लगाता है। संसार में मन लगाने वाला भयभीत रहता है और आत्मा में मन लगाने वाला निर्भय रहता है। यहां संसार में मन लगाने का अर्थ है उसमें मोह करना, आसक्त होना।

वह घटता है, और घटता है, जब तक कि वह क्रियाशून्यता को उपलब्ध न हो जाये। ताओ का अभ्यास करनेवाला, आध्यात्मिक नियम का अभ्यास करने वाला निरंतर संसार को भूलने का अभ्यास करता है और उसका यह अभ्यास तब तक चलता है जब तक सब न भूल जाये। मन का साक्षी बनकर स्मरणों का त्याग करता है और त्यागते-त्यागते जब स्मरण शांत हो गये, तब शेष चेतन-तत्त्व रह गया जो स्वस्वरूप है। यही निर्विकल्प-समाधि, असंप्रज्ञात समाधि, सहजसमाधि, अद्वैत, असंग, बक़ा तथा शेष स्थिति है।

क्रिया-शून्यता में कुछ भी करना शेष नहीं बचता। निर्विकल्पस्थिति प्राप्त हो जाने पर कुछ करना शेष नहीं रहता। जो साधक निरंतर आत्मभाव में रहने लगा, उसे अब कुछ भी कर्तव्य नहीं रह गया। आत्मतृप्त तथा आत्माराम हो जाना जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुंच जाना है।

यह साम्राज्य तभी मिलता है, जब वह कर्म-प्रपंच से मुक्त होता है। कर्मशील उस साम्राज्य को पाने का अधिकारी नहीं है। जो नाना दुनियादारी कर्मों में उलझा है, वह आत्मशांति रूपी साम्राज्य को नहीं पा सकता। इसे वही पा सकता है जो कर्म-प्रपंच से परे है।

ध्यान देने योग्य है कि जीवन में निर्वाह तथा व्यवहार हैं। इनके संबंध में प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियां हैं। इनमें रहकर अनासक्तिपूर्वक कर्म करना अनिवार्य है। मन-इंद्रियों की लंपटता तथा दूसरों को दुख देने का काम विवेकवान सर्वथा छोड़ देते हैं। वे शुभ कर्म करते हैं, परंतु अनासक्तिपूर्वक। और उसे भी तौल-तौलकर जिससे अधिक प्रवृत्ति का बोझा न पड़े।

एकाग्र मन वाला मनुष्य स्थूल सेवा का काम उत्साह से करता है। उत्साह और प्रसन्नता से काम करते समय, और बाद में उसका मन प्रसन्न रहता है। जीवन में सेवा-कार्य का प्रबल पक्ष है। ग्रंथकार इसे न करने की बात नहीं कहते हैं। अतएव साधक जब स्थूल सेवा का काम हो तब उसे समर्पित होकर

करे, और समय-समय से सबकुछ छोड़कर 'non-action'—क्रिया-शून्य अवस्था में स्थित होता रहे। अंतिम स्थिति क्रिया-शून्यता की ही है।

लौकिक उपलब्धियों से जीवन में निर्भय शाश्वत शांति नहीं मिलती। अंतत: लौकिक उपलब्धियां धोखा ठहरती हैं। सबसे सिमिटकर आत्मलीनता में ही निर्भय स्थिति मिलेगी। इसलिए परमशांति के इच्छुक को क्रिया-शून्य स्थिति में ठहरना चाहिए।

उक्त स्थिति तभी आयेगी जब दिखनेवाली वस्तुओं से लौटकर देखनेवाले को देखा जाये। दिखनेवाली वस्तुएं अनात्म हैं, अनित्य हैं और दुख पैदा करने वाली हैं और देखनेवाला आत्मा है, नित्य है, स्थिर है और शांतस्वरूप है।

49. उच्चतम संतों की रहनी

1. *The Man of Calling has no heart of his own.*
   He makes the people's heart his own heart.

2. *'To the good I am good;*
   to the non-good I am also good,
   for Life is goodness.
   To the faithful I am faithful;
   to the unfaithful I am also faithful,
   for Life is faithfulness.'

3. *The Man of Calling lives very quietly in the world.*
   People look for him and listen out for him with surprise,
   and the Man of Calling accepts them all as his children.

अनुवाद

1. *संत का अपना कोई मन नहीं होता।*
   वे लोगों के मन को अपना मन मानते हैं।

2. *'अच्छों के प्रति मैं अच्छा हूं,*
   जो अच्छे नहीं हैं, उनके प्रति भी मैं अच्छा हूं,
   क्योंकि जीवन अच्छाई से पूर्ण है।
   विश्वसनीय के प्रति मैं विश्वसनीय हूं,
   अविश्वसनीय के प्रति भी मैं विश्वास रखता हूं।
   क्योंकि जीवन विश्वास से पूर्ण है।'

3. *संत संसार में पूर्ण शांति से जीते हैं।*
   लोग उनकी ओर आशा से देखते हैं,
   और आश्चर्य से उन्हें सुनते हैं,
   और संत उन सबको अपने बच्चों की तरह मानते हैं।

भावार्थ—1. संत को अपना कोई दुराग्रह नहीं होता। वे लोगों के मन को अपना मन मानते हैं और सबसे सुंदर व्यवहार करते हैं।

2. मैं अच्छे लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करता हूं और जो बुरे हैं उनके प्रति भी मैं अच्छा भाव रखता हूं। क्योंकि जीवन अच्छाइयों से भरा है। मैं विश्वास योग्य पर विश्वास करता हूं और जो विश्वास योग्य नहीं हैं उन पर भी विश्वास करता हूं। क्योंकि जीवन विश्वासपूर्ण है।

3. संत जगत में अत्यंत शांति से जीवन व्यतीत करते हैं। संसार के लोग उनकी ओर आशा से देखते हैं और आश्चर्य से उनकी बातें सुनते हैं, और संत उन्हें अपने बच्चों के समान मानते हैं।

भाष्य—संत का अपना कोई मन नहीं होता। वे लोगों के मन को अपना मन मानते हैं। संत वह है जो समस्त आग्रहों, पक्षपातों, ग्रंथियों से सर्वथा रहित है। **'संत का अपना कोई मन नहीं होता।'** इसका अर्थ है कि उनका कोई पूर्वग्रह नहीं होता, हठ नहीं होता। वे लोगों के मन को अपना मन मानते हैं। अर्थात लोगों के मन की रक्षा करते हैं। वे ध्यान रखते हैं कि मेरे द्वारा किसी के मन को ठेस न पहुंचे। जहां तक बन सके वे दूसरों के मन को प्रसन्नता देने वाला बरताव करते हैं।

संत का मन मक्खन होता है; क्योंकि वे अहंकार और कामनाओं से शून्य होते हैं। इसलिए उनका मन अत्यंत कोमल होता है। वे दूसरों के दुख-दर्द को जानते हैं। वे अपने मन को देखते हैं, इसलिए दूसरों के मन को भी ठीक से जानते हैं। वस्तुत: किसी का मन अपमान, तिरस्कार तथा रूखा व्यवहार नहीं चाहता। इस तथ्य को जानते तो सब हैं, परंतु इस जानकारी का आदर कम लोग कर पाते हैं। जिसका मन निर्मल है वही इस जानकारी के अनुसार सबसे व्यवहार करता है। वह दूसरे के मन को दुखाने से बचता है। जहां तक संभव हो, सत्य के साथ दूसरों के मन को संत प्रसन्नता देते हैं।

अच्छों के प्रति मैं अच्छा हूं, जो अच्छे नहीं हैं, उनके प्रति भी मैं अच्छा हूं; क्योंकि जीवन अच्छाई से पूर्ण है। संत कहते हैं कि जो अच्छे लोग हैं, जिनमें संयम और शील होते हैं, मैं भी उनके साथ शील का बरताव करता हूं और जो असंयत और निश्शील हैं, उनके प्रति भी मेरे मन में शील है। उनके प्रति भी जितना संभव हो शील का बरताव करता हूं; अन्यथा उनसे अपने को बचाकर रखता हूं। निश्शीलता का बरताव किसी से नहीं करता हूं; क्योंकि जीवन अच्छाइयों से पूर्ण है, तो उसमें बुराई कहां से आये!

किसी के साथ बुरा बरताव करने के लिए स्वयं बुरा बनना पड़ता है। जिसका जीवन अच्छाइयों से भरा है, जिसमें पूर्ण संयम और शील है, उसमें बुराई है ही नहीं, तो वह दूसरों के साथ बुरा बरताव करने के लिए अपने में बुराई कहां से लायेगा? एक संत को एक व्यक्ति गाली दे रहा था। संत मीठे वचन बोल रहे थे। संत के शिष्य ने कहा, 'महाराज! वह आपको गाली दे रहा

है और आप उससे मीठी बातें करने के चक्कर में हैं।'' संत ने कहा, ''जिस वस्तु में जो रस है वही तो उससे टपकेगा।''

विश्वसनीय के प्रति मैं विश्वसनीय हूं, अविश्वसनीय के प्रति भी मैं विश्वास रखता हूं; क्योंकि जीवन विश्वास से पूर्ण है। जो मनुष्य आत्मसंतुष्ट है, वह आत्मविश्वास से भरा होता है। वह विश्वसनीय के साथ विश्वास करता है। जो विश्वास के योग्य नहीं है, उसके प्रति भी वह विश्वास करता है कि यह मेरी कोई हानि नहीं कर सकता। अतएव वह उससे भय नहीं करता। जो आत्मज्ञान, आत्मसंयम और आत्मविश्वास से भरा है, उसको यह विश्वास होता है कि मेरी हानि संसार में कोई करने वाला नहीं है। जब मैं अपनी हानि करना सर्वथा छोड़ दिया हूं, तब दूसरा कौन मेरी हानि कर सकता है?

अनात्म वस्तुओं में मोह करना अपनी हानि करना है। यह काम जो सर्वथा छोड़ देता है, वह विश्वविजयी हो जाता है।

संत संसार में पूर्ण शांति से जीते हैं, लोग उनकी ओर आशा से देखते हैं और आश्चर्य से उन्हें सुनते हैं; और संत उन सबको अपने बच्चे की तरह मानते हैं। जिसकी सारी कामनाएं पूर्ण शांत हो गयी हैं और सारा अहंकार पूर्ण विलीन हो गया है, वह सब समय आनंदकंद है। वह इस कलह और नश्वरता भरे संसार में शांति से जीवन व्यतीत करता है। संसारी मनुष्य सारी भौतिक संपन्नता में रहकर भी मानसिक ताप, राग-द्वेष एवं चिंता-शोक की आग में जलते हैं। उनमें जो थोड़ा शुद्ध संस्कारी होते हैं, वे शांतात्मा संतों का शांतिपूर्ण जीवन देखकर उनसे आशान्वित होते हैं कि इनकी शरण में हमें भी शांति मिल सकती है। धूप से तपा व्यक्ति वृक्ष की शीतल छाया में आना ही चाहेगा।

संत जब अपनी ज्ञान-गंगा को प्रवाहित करते हैं, तब संसार के शुद्ध संस्कारी मनुष्य उसे आश्चर्यचकित होकर सुनते हैं। संत कहते हैं कि इसी जीवन में, इसी गर्दा-गुब्बार तथा राग-द्वेष भरे नश्वर संसार में रहते हुए मनुष्य अपने आप को पहचानकर तथा सारी अहंता-ममता एवं कामनाओं को त्यागकर परमशांति, निर्भय पद तथा निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। तब इन बातों को संसार के सुज्ञ लोग आश्चर्य से सुनते हैं। उनको इसलिए आश्चर्य होता है कि चिंता में जलता हुआ मन पूरा शीतल हो सकता है, यह अद्भुत बात है।

संत संसार के लोगों को अपने बच्चों के समान मानते हैं। उनका सबके प्रति प्यार होता है। वे किसी के साथ घृणा नहीं करते।

50. विरला ही संसार-सागर से तरता है

1. *Going out is Life, going in is death.*
   Three out of ten are companions of Life.
   Three out of ten are companions of death.
   Three out of ten
   are men who live
   and thereby move towards the place of death.
   What is the reason for this?
   Because they want to create an increase of their lives.

2. *I have heard that whosoever knows how to live life well*
   wanders through the land
   and meets neither rhino nor tiger.
   He walks through an army
   and avoids neither armour nor weapons.
   The rhino finds nothing to sink its horn into.
   The tiger finds nothing to sink its claws into.
   The weapon finds nothing to receive its sharpness.
   Why is this so?
   Because he has no mortal spot.

अनुवाद

1. *बाहर जाना जीवन है, भीतर जाना मृत्यु है।*
   दस में से तीन जीवन के सहभागी हैं।
   दस में से तीन मृत्यु के सहभागी हैं।
   दस में से तीन वे मनुष्य हैं,
   जो जीते हुए मृत्यु की ओर अग्रसर हैं।
   इसका कारण क्या है?
   क्योंकि वे अपने जीवन की अभिवृद्धि के लिए तत्पर हैं।

2. *मैंने सुना है कि जो जीवन जीने का उत्तम ढंग जानता है,*
   सर्वत्र भ्रमण करते हुए भी,

उसका गैंडा या बाघ से सामना नहीं होता।
सैन्य दल के बीच से वह गुजरता है,
और उसके अस्त्र-शस्त्र से अपने को बचाता नहीं।
गैंडा अपने सींग से उस पर कहां वार करे?
बाघ अपने पंजों से उस पर कहां वार करे?
अस्त्र-शस्त्र अपनी धार किसमें प्रवेश करायें?
यह कैसे संभव है?
क्योंकि, उसके मर्मस्थल नहीं है।

भावार्थ—1. अव्यक्त से व्यक्त होना जीवन है और व्यक्त से अव्यक्त की तरफ लौट जाना मृत्यु है। दस लोगों में से तीन ऐसे हैं जो अच्छा जीवन जीते हैं। स्वास्थ्य, सदाचार, धन, अनुगामी, प्रसिद्धि आदि सब बातों में वे संपन्न होते हैं। इसलिए वे जीवन के सहभागी हैं। दस में से तीन ऐसे हैं जो सब प्रकार से हीन हैं। इसलिए वे जीते हुए भी मृत्यु-तुल्य हैं। दस में से तीन ऐसे हैं जो जीवन में संपन्न तो हैं, किंतु मृत्यु की तरफ अग्रसर हैं; क्योंकि वे भौतिक जीवन की ऐश्वर्य-वृद्धि के लिए अत्यंत तृष्णालु हैं।

2. मैंने सुना है कि जो मनुष्य जीवन जीने का सर्वोत्तम ढंग जानता है वह सब तरफ घूमता है, परंतु गैंडे, बाघ उसकी क्षति नहीं कर सकते। वह सेना के बीच में होकर गुजरता है और उसकी कोई हानि नहीं होती। गैंडे उस पर कहां प्रहार करें, बाघ उस पर अपने पंजे कहां मारें और अस्त्र-शस्त्र उस पर कहां घाव करें? क्योंकि उसके जीवन में कहीं मर्म-स्थल नहीं है।

भाष्य—बाहर जाना जीवन है, भीतर जाना मृत्यु है। यहां बाहर का अर्थ है व्यक्त, प्रकट और भीतर का अर्थ है अव्यक्त, अदृश्य। यह अपना माना गया शरीर नहीं था, अतएव भीतर था, प्रकृति के अंदर अदृश्य था। उस भीतर से, प्रकृति से शरीर बाहर आ गया, यह जीवन है। भीतर जाना मृत्यु है। यह शरीर पुनः नष्ट होकर प्रकृति में लीन हो गया, यह मृत्यु है। इस जीवन के पहले शरीर नहीं था, और बाद भी शरीर नहीं रहेगा। केवल बीच में कुछ क्षण के लिए दृश्यमान है। यहां बाहर बहिर्मुखता और भीतर आध्यात्मिक अंतर्मुखता नहीं है, किंतु शरीर का बनना-बिगड़ना अर्थ है, जो ऊपर स्पष्ट है।

दस में से तीन जीवन के सहभागी हैं। पूरी संख्या दस मान ली जाये। उसमें से तीन जीवन के सहभागी हैं। वे अच्छा जीवन जीते हैं। उनके स्वास्थ्य अच्छे हैं, सदाचार हैं, अनुगामी हैं, धन है, प्रसिद्धि है। ऐसे लोग संसार में सफल माने जाते हैं। परंतु ये निर्भय स्थान को नहीं प्राप्त हैं। इन्हें न आत्मबोध है न आत्मशोध है और न आत्मसंतोष है। अतएव लौकिक दृष्टि से सफल दिखते हुए आध्यात्मिक दृष्टि से असफल हैं।

दस में से तीन मृत्यु के सहभागी हैं। दस में से जो दूसरे तीन हैं वे मृत्युतुल्य हैं। उनके न सदाचार हैं, न स्वास्थ्य हैं, न धन है, न अनुगामी हैं और न कोई ऐश्वर्य है। वे किसी तरह खा-जी रहे हैं। वे मानो केवल मरने के लिए जी रहे हैं।

दस में से तीन वे मनुष्य हैं, जो जीते हुए मृत्यु की ओर अग्रसर हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि वे अपने जीवन की अभिवृद्धि के लिए तत्पर हैं। दस में से तीसरे वे तीन हैं जो अच्छा जीवन तो जीते हैं, परंतु उनको लौकिक जीवन तथा उसके ऐश्वर्य के लिए भयंकर तृष्णा है। वे अनुगामी, धन और प्रतिष्ठा के बड़े भूखे हैं। औपनिषदिक भाषा में कहें तो वे पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा के पीछे रात-दिन भागे-भागे घूमते हैं। ये मृत्यु की ओर अग्रसर हैं। जो नश्वर शरीर और उसके लिए ऐश्वर्य की कामना वाला होगा, वह अपने को मृत्यु के मुख में झोंक रहा है। अनात्म वस्तुओं का मोह होने से मृत्यु का भय होता है। भय मृत्यु है और निर्भयता अमरता है। आत्मस्थ व्यक्ति निर्भय होता है, देहाभिमानी भयभीत।

मैंने सुना है कि जो जीवन जीने का उत्तम ढंग जानता है, सर्वत्र भ्रमण करते हुए भी, उसका गैंडा या बाघ से सामना नहीं होता। सैन्य-दल के बीच से वह गुजरता है, और उसके अस्त्र-शस्त्र से अपने को बचाता नहीं। गैंडा अपने सींग से उस पर कहां वार करे? बाघ अपने पंजों से उस पर कहां वार करे? अस्त्र-शस्त्र अपनी धार किसमें प्रवेश करायें? यह कैसे संभव है? क्योंकि उसके कोई मर्मस्थल नहीं है।

नौ के बाद जो एक दसवां है, वह जीवन जीने का उत्तम ढंग जानता है। वह देहाभिमान सर्वथा छोड़कर आत्मज्ञान एवं स्वरूपस्थिति में जीता है। उसकी समस्त भौतिक अहंता-ममता समाप्त रहती है। इसलिए उसको गैंडे के सींग, बाघ के पंजे और सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र क्षति नहीं पहुंचा सकते। प्रश्न होता है कि यह कैसे संभव है? उत्तर है कि उस संत पुरुष के मर्मस्थल नहीं है। "He has no mortal spot." उसके पास मृत्यु-स्थान नहीं है। मृत्युस्थान ही मर्मस्थल है। मृत्युस्थान है अहंकार। वहीं पर सारे अस्त्र-शस्त्र लगते हैं। जिनका अहंकार विसर्जित हो गया, उस पर कोई कहां घात करेगा?

गैंडे के सींग, बाघ के पंजे और मनुष्यों के अस्त्र-शस्त्र देह में प्रवेश कर सकते हैं, आत्मा में नहीं। 'मोर्टल स्पॉट'—मृत्युस्थान शरीर में है, आत्मा में नहीं। जो मूलवचन में यह आया है कि गैंडे उसको सींग नहीं मार सकते, बाघ उसे पंजे नहीं मार सकते और अस्त्र-शस्त्र उसके शरीर में प्रवेश नहीं कर सकते, यह सब लाक्षणिक कथन है। संत के शरीर पर भी इनका प्रहार हो सकता है। ईसा, मंसूर आदि को मारा ही गया।

उपर्युक्त कथन का सार यह है कि जिसके मन का सारा अहंकार-ममकार मर गया है, उसने शरीर को तो पहले ही त्याग दिया है, फिर उसे मरने का भय कैसा? इस अंतिम वाक्य पर ध्यान देना चाहिए, "He has no mortal spot"—उसके पास मृत्यु-स्थान ही नहीं है। मृत्यु-स्थान है शरीर का अहंकार। उसके पूर्ण विलीन हो जाने पर निर्भय आत्मस्थिति का साम्राज्य है।

संत लाओत्ज़े दस की संख्या पूरी संख्या मानते हैं। यह स्वाभाविक भी है। एक से नौ तक अंक होते हैं और एक के साथ शून्य रखकर दस बना लिया जाता है। ग्रंथकार दस में केवल एक को संत मानते हैं। उनके कहने का तात्पर्य है कि दस में कोई एक अपना बेड़ा पार कर पाता है, इस संसार-सागर से तर पाता है। वस्तुतः यह भी लाक्षणिक ही है। वस्तुतः करोड़ों में कोई एक होगा जो पूर्ण अहंकारहीन होकर जीवन्मुक्ति में विराजता होगा।

''बाघ और गैंडे के पंजे तथा सींग और सैनिकों के अस्त्र-शस्त्र उसको कैसे नहीं बेध सकेंगे?'' यह प्रश्न विद्वान लोग कर बैठते हैं। वे वस्तुतः केवल शब्दों के अर्थ लेते हैं। यह कथन लाक्षणिक है। जो साधक देह और देहोपाधिक समस्त ऐश्वर्य को अनात्म, अनित्य और दुखपूर्ण समझकर हृदय से इन्हें अस्वीकार देता है, उसके लिए पीड़ा का स्थान रह ही नहीं जाता। पूर्ण निर्मोह पूर्ण निर्भय हो जाता है। देहाध्यास पूर्ण त्याग किये बिना यह तथ्य नहीं समझा जा सकता।

51. विश्व-नियम का महत्त्व

1. *DAO generates.*
Life nourishes.
Environment shapes.
Influences complete.
Therefore: all beings honour DAO
and cherish Life.

2. *DAO is honoured,*
Life is cherished,
without being outwardly appointed, just for themselves.

3. *Therefore: DAO generates, Life nourishes,*
makes grow, cares,
completes, keeps,
covers and protects.

अनुवाद

1. *ताओ उत्पन्न करता है।*
जीवन पोषण करता है।
भौतिक वातावरण रूप देता है।
वर्तमान प्रभाव पूर्ण बनाते हैं।
अतएव,
सभी प्राणी ताओ का सम्मान करते हैं,
और जीवन का मूल्य समझते हैं।

2. *ताओ सम्मानित होता है,*
जीवन का मूल्य समझा जाता है।
ऐसा किसी बाहरी हुक्म से नहीं,
लोग अपने आप करते हैं।

3. *अतएव,*
ताओ उत्पन्न करता है, जीवन पोषित करता है,

बड़ा करता है, देखभाल करता है,
पूर्ण करता है, आश्रय देता है,
सुरक्षा देता है और संरक्षण देता है।

भावार्थ—1. विश्व-नियम समस्त कार्य-पदार्थों को उत्पन्न करता है और जीवन का पालन करता है। आस-पास का भौतिक वातावरण पदार्थों को रूप देता है। समसामयिक भौतिक और मानसिक प्रभाव कार्य-पदार्थों को पूर्ण बनाते हैं। इसलिए सब प्राणी विश्व-नियम का आदर करते हैं और उससे जीवन का मूल्य समझते हैं।

2. विश्व-नियम सम्मानित होता है। उससे जीवन की कीमत समझी जाती है। यह सब किसी बाहरी आज्ञा से नहीं, अपितु मनुष्य अपने विवेक से करते हैं।

3. अतएव विश्व-नियम समस्त कार्य-पदार्थों को उत्पन्न करता है। जीवन का पोषण करता है। उनकी वृद्धि करता है और उनकी रक्षा करता है। उन्हें पूर्ण करता है, अपना आधार देता है। सबको अपनी सुरक्षा और संरक्षण देता है।

भाष्य—यह बराबर निवेदन किया जाता है कि ताओ का अर्थ विश्व-नियम है। वह कोई व्यक्ति नहीं है। संत लाओत्ज़े जब उसकी चर्चा करते हैं तब भावुक हो जाते हैं और उसके विषय में ऐसे शब्दों का प्रयोग कर देते हैं जिससे कहीं-कहीं लगता है कि वह व्यक्ति है; जैसे वह 'cares' अर्थात देखभाल करता है। यह केवल काव्यात्मक कथन है।

ताओ से, विश्व-नियम से सब उत्पन्न होता है। जितने भौतिक पदार्थ उत्पन्न-विनष्ट होते हैं, सब विश्वव्यापी नियम से होते हैं। उसी नियम से सारी सृष्टि का पालन-पोषण होता है। भौतिक वातावरण कार्य-पदार्थों को रूप देता है। वह भी विश्वनियम ही है। सब प्राणी विश्व-नियम का जाने-अंजाने सम्मान करते हैं तभी वे टिकते और व्यवहार करते हैं।

लोग विश्व-नियम को सम्मान देते हैं। विश्व-नियम से ही जीवन का मूल्य समझा जाता है, ऐसा किसी बाहरी हुक्म से नहीं। संत लाओत्ज़े किसी ईश्वर की स्थापना नहीं करते हैं। वे मनुष्य का विवेक जगाते हैं और कहते हैं कि तुम विश्व-नियम को समझो। विश्व-नियम से ही सारी सृष्टि चलती है। मूल-प्रकृति से सब कार्य-पदार्थ निर्मित होते हैं और अंत में पुन: उसी में लीन होते हैं।

52. सुरक्षा कवच मन, वाणी और इंद्रियों पर संयम

1. *The world has a beginning:*
   that is the Mother of the World.
   Whosoever finds the mother
   in order to know the sons;
   whosoever knows the sons
   and returns to the mother:
   he will not be in danger all his life long.
   Whosoever closes his mouth
   and shuts his gates:
   he will not be troubled all his life long.

2. *Whosoever opens his mouth*
   and wants to set his affairs in order:
   he cannot be helped all his life long.

3. *To see the smallest means to be clear.*
   To guard wisdom means to be strong.

4. *If one uses one's light*
   in order to return to this clarity
   one does not endanger one's person.
   This is called the hull of eternity.

अनुवाद

1. *संसार का एक आदि है,*
   वही संसार की जननी है।
   पुत्रों को जानने के लिए जो माता को जानता है,
   पुत्रों को जानकर जो माता की ओर लौटता है,
   जीवनपर्यंत वह हानिमुक्त रहता है।

2. जो अपना मुंह बंद कर लेता है,
और अपने द्वारों को बंद कर लेता है,
उसके पूरे जीवन में उपद्रव नहीं आते।
जो अपना मुंह खोलता है,
और व्यवहार को व्यवस्थित रखना चाहता है,
जीवनपर्यंत उसकी कोई मदद नहीं कर सकता।

3. लघुतम को देखने का अर्थ है स्पष्ट दृष्टि होना,
ज्ञान को सुरक्षित रखने का अर्थ है मजबूत होना।

4. यदि कोई अपने प्रकाश का उपयोग करके,
स्पष्ट दृष्टि को पुनः पाता है,
तो वह अपने को आगामी खतरों से मुक्त रखता है।
यही है शाश्वतता का कवच।

भावार्थ—1. विश्व-प्रपंच का एक मूल-कारण है, वह जड़-प्रकृति है। वही समस्त कार्य-पदार्थों की जननी है। जो उत्पन्न हुए कार्य-पदार्थों की जननी मूल-प्रकृति को जानता है वह कार्य-पदार्थों को जानकर मूल-प्रकृति का अध्ययन करता है, वह पूरे जीवन में हानि नहीं उठाता है।

2. जो अपनी वाणी को वश में रखता है और अपनी इंद्रियों पर संयम रखता है, वह जीवनपर्यंत खतरे से मुक्त रहता है। परंतु जो बहुत बोलता है और इसके बल पर अपना व्यवहार ठीक रखना चाहता है, उसकी सहायता उसके पूरे जीवन में कोई नहीं करता।

3. सूक्ष्मतम तत्त्व को देखने के लिए निष्पक्ष स्पष्ट अंतर्दृष्टि होना चाहिए। ज्ञान को वही हर समय एकरस बनाये रख सकता है, जो सशक्त विवेक का होगा।

4. यदि कोई अपने ज्ञान का उपयोग कर अपनी स्पष्ट अंतर्दृष्टि को पुनः प्राप्त कर लेता है, तो उसके आगामी जीवन में उपद्रव नहीं आते हैं। यही सुरक्षा का शाश्वत कवच है।

भाष्य—संसार का एक आदि है, वही संसार की जननी है। पुत्रों को जानने के लिए जो माता को जानता है, पुत्रों को जानकर जो माता की तरफ लौटता है, जीवनपर्यंत वह हानि-मुक्त रहता है। संसार है बनता-बिगड़ता हुआ प्रवाहरूप कार्य-पदार्थ। इसकी जननी जड़-प्रकृति है। सारा निर्माण इसी से होता है और विनसकर इसी में मिलता है। प्राणियों के शरीर जड़-प्रकृति से ही निर्मित होते हैं और अन्य निर्जीव पदार्थ भी इसी से बनते हैं। अतएव सारी सृष्टि जड़-प्रकृति की संतान है। **पुत्रों को जानकर जो माता की तरफ लौटता है** सारे

निर्मित पदार्थों का मूल प्रकृति को जानकर और उसके शाश्वत नियम को समझकर जो जीवन के नियम से चलता है, वह जीवनपर्यंत खतरे से बाहर रहता है। संत लाओत्ज़े इसका उपाय आगे बताते हैं।

जो अपना मुंह बंद कर लेता है, और अपने द्वारों को बंद कर लेता है, उसके पूरे जीवन में उपद्रव नहीं आते। वाणी तथा इंद्रियों पर पूरा नियंत्रण कर लेना मुंह और द्वारों को बंद कर लेना है। अपने अहंकार को पूरा मारे बिना कोई दुखों से मुक्त नहीं हो सकता। किसी ने कैसा अच्छा कहा है—

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्तव: चाहे।
कि दाना ख़ाक में मिलकर, गुले गुलज़ार होता है॥

अर्थात यदि तू अपनी स्थिति चाहता है तो अपने नाम-रूप के अहंकार को पूरा छोड़ दे। बीज मिट्टी में मिलकर पौधा बनता है, तब वह वाटिका का फूल बनता है।

अपने को मिटाये बिना कोई अपने अगाध अमृतपद पर स्थित नहीं हो सकता। नकली मैं को मिटाकर असली मैं में स्थिति होती है। नकली मैं है शरीर, उसके नाम, रूप, गुण, कर्म तथा समस्त भौतिक उपलब्धियां। असली मैं है आत्म-अस्तित्व। कोई आत्मा में, स्व-स्वरूप चेतन में तभी स्थित हो सकता है, जब वह अपने नकली मैं को पूरा मिटा दे, देह तथा उसके सारे जंजाल का अहंकार छोड़ दे। देहाभिमान पूरा छोड़ देने के बाद बोलना बंद ही हो जायेगा।

वाणी को कोई जीवन भर के लिए बंद कर सकता है। परंतु एकदम मौन का कोई बड़ा महत्त्व नहीं है। महत्त्व है कम बोलना, सत्य और मीठा बोलना। यह अमर उपदेश है, **मुंह और द्वारों को बंद कर लेने वाला जीवन भर उपद्रव में नहीं पड़ता।** जिसने अपनी वाणी और मन-इंद्रियों को पूर्ण संयत कर लिया, वह दुखों से मुक्त हो गया।

जो अपना मुंह खोलता है, और व्यवहार को व्यवस्थित रखना चाहता है, जीवनपर्यंत उसकी कोई मदद नहीं कर सकता। मुंह को हर समय बंद रखने की बात नहीं है। बात है जो मनुष्य अधिक बोलता है, वाणी पर संयम नहीं रखता और यह भी चाहता है कि उसका व्यवहार व्यवस्थित रहे, वह बर्फ भूनकर खाना चाहता है। असंयत बोलने वाले का कोई साथी नहीं होता। अतएव 'बानी छोड़ दे अभिमानी।' अभिमान भरी वाणी बोलना छोड़ दो। शांति का यही रास्ता है।

लघुतम को देखने का अर्थ है स्पष्ट दृष्टि होना। जिसकी दृष्टि साफ होती है वही सूक्ष्मतम वस्तुओं को देख सकता है। इसी प्रकार जिसकी बुद्धि निष्पक्ष होती है, वही सत्य को समझ सकता है। स्वस्वरूप सूक्ष्मतम है और उसमें

स्थित होने की रहनी पूर्ण निर्हंकारता सूक्ष्मतम है। इन्हें वही समझ सकता है जो सर्वत्र निष्पक्ष तथा अनासक्त है।

ज्ञान को सुरक्षित रखने का अर्थ है मजबूत होना। जो दृढ़ धैर्य वाला तथा मन-इंद्रियों का पूर्ण संयमी है वही ज्ञान की सुरक्षा रख सकता है। अपने ज्ञान को, स्वरूपस्थिति को, समाधि एवं शांति को वही बनाये रख सकता है, जो सारे अहंकार का त्यागी हो।

यदि कोई अपने प्रकाश का उपयोग करके स्पष्ट दृष्टि को पुनः पाता है, तो अपने को आगामी खतरों से मुक्त रखता है। यही है शाश्वता का कवच। अपना प्रकाश है आत्मज्ञान, स्वरूपबोध। इसका सही उपयोग तब होता है जब सारी जड़ासक्ति छोड़ दी जाती है। सारी विषयासक्ति एवं अहंकार छूट जाने पर अपनी आंतरिक दृष्टि एवं बोधतत्त्व स्पष्ट हो जाता है। वह आगे कहीं भी इस माया-नगरी में नहीं उलझता है। उलझना है मोह करना, अहंता-ममता बनाना। वह सारे अहंकार और मोह से मुक्त होता है। इसलिए आगे उसके कल्याण में कोई बाधा नहीं आ सकती। यही है शाश्वत कवच। ''ब्रह्म वर्म ममांतरम्''[1] मेरे भीतर का वर्म (कवच) ब्रह्म है, आत्मबोध एवं पूर्ण शुचिता है।

देह-धारण दुख है। देह-यात्रा दुख है। सच्चा सुखी वही हो सकता है, जो देह-धारण और देह-यात्रा की इच्छा सर्वथा छोड़ देता है। सारी इच्छाओं का त्यागी महा सुखी हो जाता है। अतएव अनात्म वस्तुओं की अहंता, ममता, मोह, इच्छा का पूर्ण त्याग ही सुरक्षा-कवच है। जो कुछ नहीं चाहता, वह महा सुखी है।

---

1. **ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 75, मंत्र 19।**

53. साधु प्रपंच-प्रवृत्ति-शून्य हो और राजा सादा और प्रजापालक

1. *If I really know what it means*
   to live in the great DAO,
   then it is, above all, busy-ness
   that I fear.

2. *Where the great streets are beautiful and smooth*
   but the people prefer the sideroads;

3. *where the rules of court are strict*
   but the fields are full of weeds;
   where the barns are quite empty
   but garments are beautiful and glamorous;
   where everyone girds himself with a sharp sword;
   where eating and drinking habits are refined
   and goods are abundant:
   there rules confusion, not government.

अनुवाद

1. *यदि मैं सचमुच जानता हूं,*
   महान ताओ में रहना क्या है,
   तो, मैं जिससे सर्वाधिक डरता हूं,
   वह है, प्रपंच-प्रवृत्ति।

2. *जहां मुख्य मार्ग सुंदर व प्रशस्त हैं,*
   फिर भी लोग पगडंडियां पसंद करते हैं।

3. *जहां दरबार के नियम कठोर हैं,*
   किंतु खेत खर-पतवार से ढके हैं,
   जहां अन्नागार खाली हैं,

किंतु वस्त्र सुंदर व चटक-मटक वाले हैं,
जहां सभी की कमर में चमचमाती तलवारें बंधी हैं,
जहां भोजन और पेय उत्तम हैं और वस्तुएं बहुतायत हैं,
वहां अव्यवस्था का साम्राज्य है, सरकार का नहीं।

भावार्थ—1. यदि मैं जीवन के शाश्वत नियम को समझता हूं और उसके अनुसार रहनी में रहना चाहता हूं, तो मैं प्रपंच-प्रवृत्ति से हटकर रहूंगा।

2. चौड़े सुंदर पथ को छोड़कर, लोग गंदी गलियों में चलना चाहते हैं।

3. जहां राज-दरबार के नियम कठोर हैं, परंतु कृषि-कार्य की उपेक्षा होने से खेत घास-पतवार से भरे होते हैं, और अन्न-भंडार खाली पड़े हैं। परंतु राजपुरुषों के वस्त्र चमकीले हैं और उन सबकी कमर में चमकती तलवारें बंधी हैं। उनके खाने-पीने की वस्तुएं उच्चस्तरीय एवं कीमती हैं और आवश्यकता से अधिक उनका उपयोग है। वहां अव्यवस्था का साम्राज्य है, सरकार का नहीं।

भाष्य—यदि मैं सचमुच जानता हूं महान ताओ में रहना क्या है, तो मैं जिससे सर्वाधिक डरता हूं, वह है, प्रपंच-प्रवृत्ति। हमारे आध्यात्मिक जीवन का महान ताओ है, महान नियम है—रुकना, पीछे हटना। यदि कोई गहरी निर्भयता और शाश्वत शांति चाहता है, तो वह विवाद छोड़ता है, कलह छोड़ता है, भीड़ से हटता है, विस्तार से हटता है, कुछ अपना मानने से हटता है, व्यक्तिगत अधिक संग्रह से हटता है। वह धीरे-धीरे अपनी नकली हस्ती को शून्य बना देता है। उसको देखने, सुनने, स्पर्श करने, सूंघने, स्वाद लेने और मनोविलास करने की इच्छा नहीं रहती। जिसने जीवन और जीवन-सफलता के नियम को समझा, वह प्रपंच-प्रवृत्ति से डरता है। वह सबसे हार मानकर अपने में सिमिटकर जीता है।

जहां मुख्य मार्ग सुंदर व प्रशस्त हैं, फिर भी लोग पगडंडियां पसंद करते हैं। मन-इंद्रियों को अंतर्मुख कर स्वयं में शांत होना कल्याण का प्रशस्त-पथ है, परंतु लोग इसे छोड़कर नाना कर्मकांड और धर्म के नाम पर चलनेवाले अंधविश्वास की गंदी गलियों में भटकते हैं।

जहां राजदरबार के नियम कठोर हैं; राजाओं, नेताओं, मंत्रियों, अफसरों के वस्त्र चमकते हुए बहुमूल्यवान हैं; उनकी कमर में चमकती तलवारें बंधी हैं; उनके खाने-पीने की वस्तुएं बहुमूल्यवान और आवश्यकता से बहुत अधिक हैं; किंतु किसानों के खेत खर-पतवार से भरे हैं, अन्न भंडार खाली हैं; वहां अव्यवस्था का साम्राज्य है, सरकार का नहीं।

संत लाओत्ज़े सरकार में रहनेवाले राजाओं, अफसरों आदि के अहंकार, प्रजा की उपेक्षा, उनके स्वयं के विलासी जीवन आदि पर कटाक्ष करते हैं। जहां

सरकारी आदमी विलासी जीवन जी रहे हैं और साधारण जनता जीवन-निर्वाह की वस्तुओं के लिए तरसती है, वहां सरकार का राज्य नहीं, अपितु अव्यवस्था का राज्य है। सरकार में रहने वालों का काम है कि वे अपने जीवन पर खर्च संयम से करें और जितना संभव हो प्रजा की असुविधा दूर करने का प्रयत्न करें।

54. आत्म-उन्नति, संसार-उन्नति और संसार-ज्ञान

1. *What is well planted will not be torn up.*
   What is well kept will not escape.

2. *Whosoever leaves his memory to his sons and grandsons*
   will not fade away.

3. *Whosoever moulds his person, his life becomes true.*
   Whosoever moulds his family, his life becomes complete.
   Whosoever moulds his community, his life will grow.
   Whosoever moulds his country, his life will become rich.
   Whosoever moulds the world, his life will become broad.

4. *Therefore: by your own person judge the person of the other.*
   By your own family judge the family of others.
   By your community judge the community of others.
   By your country judge the country of others.
   By your world judge the world of others.

5. *How do I know the nature of the world?*
   Just through this.

अनुवाद

1. *जिसकी जड़ें मजबूत हैं, उसे उखाड़ा नहीं जा सकता।*
   जो सुरक्षित है, वह खो नहीं सकता।

2. *जिनकी याद उनके बच्चों और नाती-पोतों में सुरक्षित है,*
   उनका यश क्षीण नहीं होगा।

3. *जो अपने चरित्र को संवारता है, उसका जीवन प्रामाणिक होता है।*
   जो अपने परिवार का चरित्र संवारता है, उसका जीवन सर्वांगपूर्ण होता है।
   जो अपने समाज का चरित्र संवारता है, उसका जीवन विकास करेगा।
   जो अपने राष्ट्र का जीवन संवारता है, उसका जीवन समृद्ध होगा।
   जो संसार का चरित्र संवारता है, उसका जीवन सार्वभौमिक होगा।

4. *अतएव,*
अपने चरित्र से दूसरों का चरित्र परखो।
अपने परिवार से दूसरों का परिवार परखो।
अपने समाज से दूसरों का समाज परखो।
अपने राष्ट्र से दूसरों का राष्ट्र परखो।
अपने संसार से दूसरों का संसार परखो।

5. *संसार का स्वभाव मैं कैसे जानूं?*
इस (ताओ) के माध्यम से।

भावार्थ—1. सहनशील चरित्रवान की जड़ें मजबूत होती हैं, अतएव उन्हें कोई उखाड़ नहीं सकता। अंतर्मुख व्यक्ति सुरक्षित है, वह खो नहीं सकता।

2. अच्छे चरित्र और शुभ संस्कारों के कारण जिनकी स्मृति उनके अनुगामियों में सुरक्षित है, उनकी कीर्ति खो नहीं सकती।

3. जो अपने आचरण को सुधारता है, उसका जीवन दूसरों के लिए उत्तम उदाहरण बनता है। जो अपने परिवार के आचरण का सुधार करता है, उसका जीवन सभी प्रकार से आदरणीय होता है। जो अपने समाज के आचरण को सुधारता है, उसका जीवन उन्नतिशील होता है। जो अपने राष्ट्र के आचरण को सुधारता है, उसका जीवन संपन्न होता है। जो संसार के आचरण को सुधारने का प्रयास करता है, उसका जीवन व्यापक हो जाता है।

4. इसलिए, अपने पवित्र आचरण से दूसरों के आचरण को परखा जा सकता है। अपने परिवार के पवित्र आचरण से दूसरे परिवार का आचरण परखा जा सकता है। अपने समाज के पवित्र आचरण से दूसरे के समाज के आचरण को परखा जा सकता है। अपने राष्ट्र के पवित्र व्यवहार से दूसरे के राष्ट्र को परखा जा सकता है। अपने संसार के पवित्र भाव से दूसरे के संसार को परखा जा सकता है।

5. संसार का स्वभाव कैसे जाना जाये? विश्व-नियम के आधार पर।

भाष्य—जिसकी जड़ें मजबूत हैं उसे उखाड़ा नहीं जा सकता। जिसका चरित्र उज्ज्वल है, आचरण पवित्र है और जो दृढ़, धैर्यवान एवं सहनशील है, उसे कोई उखाड़ नहीं सकता। ईर्ष्या-द्वेषवश कोई विवाद करके परिवार या समाज में उसके लिए भ्रम के बादल कुछ समय के लिए भले तैयार कर दे, परंतु वे थोड़े दिनों में उड़ जायेंगे और वह निर्दोष मनुष्य बादलों से निकले पूर्णमासी के चंद्रमा की तरह अपना प्रकाश फैलाता हुआ दिखायी देगा। चरित्रवान धैर्यवान व्यक्ति यह परवाह ही नहीं करता कि लोग मेरे लिए क्या

सोचते या कहते हैं, अपितु वह निरंतर अपने को देखता है कि मैं क्या हूं। मैं ठीक हूं, फिर परवाह नहीं है।

जो सुरक्षित है वह खो नहीं सकता। जिसका मन नाशवान वस्तुओं का सहारा नहीं लेता, अपितु आत्मा का सहारा लेता है, दृश्य का अभाव कर आत्मलीन है, वह सुरक्षित है। असंगता, अनासक्ति, कैवल्य, अद्वैत, अकेलापन, निर्विकल्प ही सुरक्षित है। स्वरूप-स्थिति ही सुरक्षित है। यह खो नहीं सकती।

जिनकी याद उनके बच्चों और नाती-पोतों में सुरक्षित है, उनका यश क्षीण नहीं होगा। यह एक व्यावहारिक बात है। जिसके कुल में कुछ अच्छे लोग हो जाते हैं, उनके कुल की कीर्ति बहुत दिनों तक चलती है।

अपने चरित्र को सुधारनेवाला प्रामाणिक, परिवार के चरित्र को सुधारनेवाला सर्वांगपूर्ण, समाज के चरित्र को सुधारनेवाला विकासशील, राष्ट्र का चरित्र सुधारनेवाला समृद्ध और संसार का चरित्र सुधारनेवाला सार्वभौमिक होता है। यह सब नीति के वचन हैं। वस्तुत: अपना चरित्र सुधार ही सबके सुधार में कारण है। जिसका अपना चरित्र नहीं सुधरा है, वह किसी का कोई सुधार नहीं कर सकता। इसलिए सुधारक को पहले अपना चरित्र सुधारना चाहिए।

दूसरों के चरित्र, दूसरे परिवार, समाज, राष्ट्र और संसार के चरित्र की परख अपने परिवार, समाज, राष्ट्र आदि से करने की बात तभी संभव है जब अपने परिवार, समाज, राष्ट्र आदि के चरित्र पवित्र हों। वस्तुत: विवेक से ही सबके चरित्र की परख होती है।

हर मनुष्य का मुख्य काम है कि वह अपने चरित्र को शुद्ध रखे, अपने जीवन की हर क्रिया को परखता रहे और उनको पूर्ण शुद्ध बनाये रखने का प्रयास करे। इसी में अन्य का, परिवार का, समाज का, राष्ट्र का और संसार का भला है।

संसार का स्वभाव कैसे जानूं? इस (ताओ) के माध्यम से। संसार का स्वभाव, प्रकृति, गुण-धर्मों का ज्ञान कैसे हो? विश्व-नियम के आधार पर। संसार को समझने के लिए संसार का, जड़-चेतन का, उनके गुण-धर्मों का गहरा अध्ययन करना चाहिए। संत लाओत्ज़े आध्यात्मिक हैं, किंतु वैज्ञानिक हैं। वे यह नहीं कहते कि परमात्मा का नाम लो, सब जान जाओगे अथवा शास्त्रों को पढ़कर जान जाओगे। वे कहते हैं कि संसार को तभी समझ सकते हो जब संसार के नियमों का ज्ञान होगा। ध्यान देने योग्य है—

"How do I know the nature of the world? Just through this." मैं कैसे जानूं इस संसार के स्वभाव को? ठीक इसके द्वारा—ताओ के द्वारा, विश्व-नियम के द्वारा।

---

55. ज्ञानी शिशुवत सरल और शांत होता है

1. *Whosoever holds fast to Life's completeness*
   is like a newborn infant:
   Poisonous snakes do not bite it.
   Scavenging animals do not lay hold of it
   Birds of prey do not hunt for it.

2. *Its bones are weak, its sinews soft*
   and yet it can grip firmly.
   It does not yet know about man and woman,
   and yet its blood stirs
   because it has abundance of seed.

3. *It can cry all day long*
   and yet its voice does not become hoarse
   because it has abundance of peace.
   To know peace means to be eternal.
   To know eternity means to be clear.

4. *To increase life is called happiness.*
   To apply one's strength to one's desire is called strong.
   When things have grown strong they age.
   For this is the counter-DAO,
   and counter-DAO is close to the end.

अनुवाद

1. *जो जीवन की समग्रता को दृढ़ता से धारण करता है,*
   वह नवजात शिशु की भांति हो जाता है।
   जहरीले सर्प उसे नहीं डसते।
   हिंसक पशु उस पर हमला नहीं करते।
   शिकारी पक्षी उसका शिकार नहीं करते।

2. यद्यपि उसकी हड्डियां मुलायम हैं, उसकी नसें मुलायम हैं,
तो भी उसकी पकड़ मजबूत होती है।
यद्यपि वह नर-नारी के विषय में नहीं जानता,
तथापि उसके खून में गति है,
क्योंकि उसमें जीवन-बीज की प्रचुरता है।

3. दिन भर पुकार कर उपदेश देने पर भी उसकी आवाज कर्कश नहीं होती,
क्योंकि उसमें शांति की प्रचुरता है।
शांति को जानना शाश्वत होना है।
शाश्वत को जानना विवेकी होना है।

4. जीवन के फैलाव को आनंद कहते हैं।
इच्छा के पीछे अपनी शक्ति लगाना मजबूत होना कहते हैं।
जब चीजें पर्याप्त मजबूत हो जाती हैं, वे बूढ़ी हो जाती हैं।
चूंकि यह ताओ के खिलाफ है,
और ताओ के खिलाफ होना विनाश के निकट होना है।

भावार्थ—1. पूर्ण अंतर्मुखता जीवन की समग्रता है। इसको धारण करने-वाला नवजात शिशु की तरह कोमल हो जाता है। न उसे विषधर सर्प डसते हैं, न हिंसक पशु उस पर हमला करते हैं और न शिकारी पक्षी उसको चोट पहुंचाते हैं।

2. उसकी हड्डियां और नसें भले कोमल हैं, किंतु उसकी धारणा बलवान होती है। वह स्त्री-पुरुषजनित विलास से अनभिज्ञ है, किंतु उसके रक्त में गति है, क्योंकि उसमें जीवनी-शक्ति की बहुलता है। वह दिन भर पुकारकर उपदेश करता है, तो भी उसकी वाणी में कड़वाहट नहीं रहती; क्योंकि उसके भीतर शांति का साम्राज्य है।

3. शांति का अनुभव करनेवाला शाश्वत पद में स्थित हो जाता है। शांति का अनुभव करने वाले का मन विवेक में ढल जाता है, जिससे उसका पूरा जीवन निष्कंटक हो जाता है।

4. लोग मानते हैं कि यदि जीवन बहुआयामी हो, तो आनंद मिलेगा। ऐसे लोग कहते हैं कि इच्छाओं के पीछे अपनी पूर्ण शक्ति लगा देने से हम हर प्रकार से बलवान हो जायेंगे। परंतु याद रहे, जब संसार की वस्तुएं पूरी मजबूत हो जाती हैं तब वे बूढ़ी हो जाती हैं। इसलिए निर्मित वस्तुओं में मन रखना विश्व-नियम के विरुद्ध है, और विश्व-नियम के विरुद्ध व्यवहार करना पतन की ओर जाना है।

भाष्य—जो जीवन की समग्रता को दृढ़ता से धारण करता है, वह नवजात शिशु की भांति हो जाता है। जहरीले सर्प उसे नहीं डसते, हिंसक पशु उस पर हमला नहीं करते, और शिकारी पक्षी उसका शिकार नहीं करते। शरीर के अहंकार से सबका अहंकार है। जिस साधक का शरीर का अहंकार सर्वथा गल जाता है, वह आत्मलीन हो जाता है। आत्मलीनता ही जीवन की समग्रता है। इसी में सारे भय और दुखों का नाश होता है। जो मनुष्य इस स्थिति को दृढ़ता से धारण कर लेता है, वह अत्यंत विनम्र हो जाता है। ग्रंथकार कहते हैं कि वह नवजात शिशु की तरह कोमल हो जाता है। शरीरादि अनात्म पदार्थ द्वैत हैं। इन्हीं का अहंकार होता है। अहंकार ही मनुष्य को कठोर बनाता है। जब इनका अहंकार पूर्ण समाप्त हो गया, तब आत्मा अद्वैत हो गया, दो के बिना अकेला हो गया। फिर वह सरल हो जाता है बालक के समान। उसका क्रोध बुझ जाता है। **उस पर सर्प, सिंह, पक्षी आदि हिंसक जंतु हमला नहीं करते।** यह वाक्य उसकी महिमा में कहा गया है। हिंसक जंतु किसी को भी दुख दे सकते हैं। अतएव उक्त वचन लाक्षणिक है। इसका अर्थ है कि वह भव-बंधन से मुक्त होकर अपने आप निर्भय स्वरूप में विराजता है।

यद्यपि उसकी हड्डियां मुलायम हैं, उसकी नसें मुलायम हैं, तो भी उसकी पकड़ मजबूत होती है। बच्चे की हड्डियां और नसें मुलायम होती हैं, परंतु उसकी पकड़ मजबूत होती है; वैसे आत्मलीन पुरुष का शरीर भी तो प्राकृतिक बनावट के अनुसार दुर्बल है, विकारी, परिवर्तनशील और नश्वर है, परंतु उसके बोध की पकड़ मजबूत होती है। जैसे जीवन की इच्छा रखने वाला बिच्छू, सांप तथा विष को नहीं छूता, वैसे बोधवान अनात्म वस्तुओं में राग नहीं करता। बोधवान की दृष्टि में मोह ही सर्प है, सिंह है, विष है। इसलिए वह मोह से सर्वथा रहित रहता है, अतएव सुरक्षित रहता है।

यद्यपि वह नर-नारी के विषय में नहीं जानता, तथापि उसके रक्त में गति है, क्योंकि उसमें जीवन-बीज की प्रचुरता है। जैसे बच्चा नर-नारी के विषय से अनभिज्ञ है, परंतु उसके रक्त में गति है, वैसे बोधवान संत भी स्त्री-पुरुष संबंधित विषय-विकार से सर्वथा रहित रहता है, परंतु उसके रक्त में गति है। उसमें जीवनी शक्ति की अधिकता है। अतएव उसके बल से वह आत्मकेंद्रित होने का काम करता है। देह की जो शक्ति अबोध अवस्था में मनुष्य को पतन की तरफ ले जाती है, वही शक्ति बोध अवस्था में उसे उत्थान की तरफ ले जाती है। ऊर्जाहीन व्यक्ति न बंधन बना सकता है और न मोक्ष-साधना कर सकता है। बोधवान के शरीर और मन की ऊर्जा उसे परिधि से लौटाकर केंद्र में स्थित कर देती है। मन का पसारा परिधि है और आत्मा केंद्र है। हम मन के पसारा में उलझकर दुखी हैं। उससे लौटकर आत्मकेंद्रित होकर

सारा दुख दूर होता है। सद्गुरु कबीर ने भी कहा है—*अवधू छाड़हु मन विस्तारा।*

दिन भर पुकार कर उपदेश देने पर भी उसकी आवाज कर्कश नहीं, क्योंकि उसमें शांति की प्रचुरता है। जैसे बच्चा प्राय: दिन भर चिल्लाता है, परंतु उसकी आवाज अनसुहाती नहीं लगती, वैसे संत दिन भर समय-समय से पुकार-पुकार कर उपदेश करते हैं, "It can cry all day long." वह दिन भर पुकार कर शिक्षा देता है। कबीर साहेब तो बारंबार कहते हैं 'कहहिं कबीर पुकारि के' परंतु संत की वाणी कर्कश नहीं होती है। सत्य होने से कर्कश लगे, यह अलग बात है। इस ग्रंथ के अंत के सूत्र का आरंभ इसी से है—"सत्य वचन मनोहर नहीं होता, मनोहर वचन सत्य नहीं होता।" दवाई कड़वी होने पर भी जीवनदायी होती है। संत की वाणी कोमल होती है, क्योंकि उसके भीतर शांति-सागर लहराता है।

शांति को जानना शाश्वत होना है। शाश्वत को जानना विवेकी होना है। यहां शांति को जानने का अर्थ है शांति में जीना। जो शांति में जीता है, वह शाश्वत हो जाता है। आत्मा तो शाश्वत ही है। जब वह शांति में रहने लगा, अपने स्वभाव में रहने लगा, तब उसकी शांति भी शाश्वत हो गयी। पहले क्षणभंगुर विषयों में बहने से वह दुखी था। अब बोध पश्चात शांति में जीने लगा तो शाश्वत में स्थित हो गया। दृश्य क्षणभंगुर है, द्रष्टा शाश्वत है। पहले दृश्य में बहता था, अतएव क्षणभंगुरता में बहता था। अब द्रष्टा मात्र में स्थित हो गया, तो शाश्वत शांत हो गया। **शाश्वत को जानना विवेकी होना है।** शाश्वत आत्मा है। उसका स्वभाव शांत है। आत्मा को जानकर उसी बोधभाव में जीना, यही विवेकी होना है। क्षणभंगुर दृश्य का मोह त्यागकर शाश्वत आत्मा में, स्व-स्वरूप में विश्राम, यही विवेक का फल है।

जीवन के फैलाव को आनंद कहते हैं। संसारी बुद्धि वाले कहते हैं कि मनुष्य विद्वान हो, धनवान हो, पुत्रवान हो, ऊंचे पद पर पहुंचा हो, प्रतिष्ठित हो, प्रसिद्ध हो, उसके नाम की सर्वत्र गूंज हो, देश-विदेश में व्यापार फैला हो, बड़े-बड़े मठों का स्वामी हो, हजारों-लाखों अनुगामी हों इत्यादि, तो उसे आनंद मिलेगा। इतना ही नहीं, **इच्छा के पीछे अपनी शक्ति लगाना मजबूत होना कहते हैं।** जो इच्छाएं मन में उठती हैं, उनके पीछे अपनी सारी शक्ति झोंक देने पर मनुष्य बहुत उन्नति के शिखर पर पहुंच जाता है, और वह दुनिया में बहुत मजबूत हो जाता है। परंतु—

ग्रंथकार कहते हैं, **जब चीजें बहुत मजबूत हो जाती हैं, वे बूढ़ी हो जाती हैं। चूंकि यह ताओ के खिलाफ है, और ताओ के खिलाफ होना, विनाश के निकट होना है।** जिन सांसारिक उपलब्धियों से संपन्न होने पर हम अपने को

मजबूत होना मानते हैं, वे सब बूढ़ी होती हैं। मजबूत ही तो बूढ़ा होता है। हमारी सारी उपलब्धियां बूढ़ी होकर विनष्ट हो जाती हैं। सारी उपलब्धियों का आधार शरीर जीर्ण होकर नष्ट हो जाता है। अतएव लौकिक उपलब्धियों में अपने को समर्पित करना ताओ के खिलाफ है, विश्व-नियम के विरुद्ध है। छूटनेवाली वस्तुओं में मोह करना अपने आप को दुखी बनाना है। यही मनुष्य का पतन है। अतएव बाह्य भोगों से लौटकर आत्मलीन होना चाहिए जो निर्भय पद है।

---

56. अंतर्मुखता एवं आत्मसंतोष सर्वोच्च ऐश्वर्य है

1. *He who knows does not speak.*
   He who speaks does not know.

2. *One must close one's mouth*
   and shut one's gates,
   blunt one's sharp wit,
   dissolve one's confused thoughts,
   moderate one's light,
   make one's earthiness common.
   This means hidden community with DAO.

3. *Whosoever has this cannot be influenced by love,*
   nor can he be influenced by coldness.
   He cannot be influenced by gain,
   nor can he be influenced by loss.
   He cannot be influenced by glory,
   nor can he be influenced by lowliness.
   Therefore is he the most glorious on earth.

अनुवाद

1. *जो जानता है, वह बोलता नहीं।*
   जो बोलता है, वह जानता नहीं।

2. *अपना मुंह बंद रखो,*
   और अपने प्रवेशद्वारों को बंद करो।
   अपनी बौद्धिक कुशाग्रता में कमी लाओ,
   अपने असंयत विचारों को शमित करो,
   अपनी चमक मद्धिम करो,
   अपने को साधारण बनाओ।
   यही है ताओ के साथ गुप्त साझेदारी।

3. जो ऐसा कर लेता है,
वह प्रेम से अप्रभावित रहता है,
रूखेपन से भी वह प्रभावित नहीं होता।
वह लाभ से प्रभावित नहीं होता,
हानि से भी अप्रभावित रहता है।
वह ऐश्वर्य से प्रभावित नहीं होता,
और न ही दरिद्रता से प्रभावित होता है,
अतएव,
संसार में उसका ऐश्वर्य सबसे बढ़कर है।

भावार्थ—1. ज्ञानी विवादी नहीं होता, विवादी ज्ञानी नहीं होता।

2. अपनी वाणी पर संयम करो और अपने मन-इंद्रियों को स्ववश रखो। अपनी बौद्धिक उछलकूद को कम करो। अपने उन्मादी विचारों पर नियंत्रण करो। अपनी तड़क-भड़क को कम करो। अपने को सामान्य बनाओ। यही है विश्व-सत्ता के साथ अपना गुप्त संबंध।

3. जो उपर्युक्त प्रकार का आचरण करता है, वह किसी के प्रेम में बहता नहीं और किसी के रूखे व्यवहार से भी विक्षुब्ध नहीं होता। वह लौकिक लाभ के व्यामोह में नहीं उलझता, और हानि से भी द्वंद्वग्रस्त नहीं होता। वह किसी लौकिक ऐश्वर्य में आकर्षित नहीं होता, और दारिद्र्य से भयभीत नहीं होता। इसलिए इस संसार में उसका ऐश्वर्य सर्वोच्च है।

भाष्य—जो जानता है, वह बोलता नहीं, और जो बोलता है, वह जानता नहीं। यहां जानने का अर्थ है ज्ञान में जीना। जो मनुष्य ज्ञान में जीता है, वह बकबक नहीं करता। 'वह बोलता नहीं' का अर्थ यह नहीं है कि वह हर क्षण मौन रहता है, अपितु वह अहंकारपूर्वक नहीं बोलता। वह कम बोलता है, प्राय: जोर देकर नहीं बोलता। वह समय पर अपनी बात विनम्रता से कह देता है। स्वरूप-ज्ञान की रहनी में रहने वाले, निरंतर आत्माराम महामानव की आवाज मंद पड़ जाती है। **'जो बोलता है, वह जानता नहीं।'** जो ताल ठोंककर बोलता है, बहुत बड़बड़ाता है, परमात्मा के दर्शन कराते घूमता और मुट्ठी भींचकर सत्य की घोषणा करता है, वह सत्य को जानता ही नहीं है। सत्य की प्राप्ति रहनी-गहनी की बात है, बोलने की नहीं, बकबक करने की नहीं। सद्‌गुरु कबीर ने भी कहा है—

कहा-सुनी की है नहीं, देखादेखी बात।
दुलहा दुलहिन मिल गये, फीकी परी बरात॥

यह बतकही नहीं है, देखा-देखी बात है, आत्म-साक्षात्कार की बात है, अनात्म की वासना छोड़कर आत्मलीन होने की बात है। इस अवस्था में

मनोवृत्ति रूपी दुलहिन आत्मा रूपी दूल्हे से मिलकर एक हो गयी, मनोवृत्ति आत्मलीन हो गयी, और तत्त्व-प्रकृति तथा इंद्रिय-बरात फीकी पड़ गयी।

अपना मुंह बंद रखो, और अपने प्रवेश-द्वारों को बंद करो। मुंह बंद करना है, वाणी पर संयम रखना। कबीर साहेब भी कहते हैं, 'जिभ्या केरे बंद दे, बहु बोलन निरुवार।''[1] कम-से-कम बोलो। प्रवेश-द्वार हैं, आंख, नाक, कान, जीभ, चाम और मन। इन्हीं द्वारों से संसार का प्रपंच हृदय में घुसकर सारे उपद्रव होते हैं। जो मन-इंद्रियों के छिद्रों को बंद रखता है, वह उपद्रव से रहित रहता है। इन छिद्रों को सर्वथा बंद नहीं किया जा सकता। इनका नियंत्रण ही इनका बंद करना है। देखने, सुनने, स्वाद लेने, स्पर्श करने, सूंघने और सोचने में कड़ा संयम रखना मानो इन्हें बंद कर लेना है। जिससे मन विकारी हो, वह सारा काम छोड़ देना सही संयम है।

अपनी बौद्धिक कुशाग्रता में कमी लाओ। संत लाओत्ज़े साधक को शांति-धाम में पहुंचाना चाहते हैं। याद रखो, तुम्हारी बौद्धिक कुशाग्रता तुम्हें भटकाती है। बड़ी तेज बुद्धि यदि भोगों के लिए ही सारा प्रोग्राम बनाती है, तो उसके पीछे भटकने के सिवा क्या है? छुरधार बुद्धि विपरीत दिशा में लगकर मनुष्य का पतन करती है। बुद्धि वही सही है जिससे मनुष्य अंतर्मुख हो। बड़ी तेज बुद्धि की आवश्यकता नहीं है, अपितु शुद्ध-बुद्धि की आवश्यकता है और शुद्ध-बुद्धि वही है जिसके द्वारा काम करने पर पीछे पश्चाताप न हो, अपितु गहरी शांति हो।

अपने असंयत विचारों को शमित करो। मन में विचार उठते हैं, वे सामान्यतया राग और द्वेषपूर्ण प्रतिक्रिया में रहते हैं। मनुष्य हर क्षण राग-द्वेष में जीता है। परंतु वे दोनों ही निरर्थक होते हैं, और निरर्थक ही नहीं, अनर्थक होते हैं। अनुकूलता की घटना घटती है और प्रतिकूलता की घटना घटती है, और घटना घटकर वह सदैव के लिए मर जाती है। हम अपने मूर्खतावश उनकी प्रतिक्रिया में पड़े उन्हें मन में जिलाये रखते हैं, और उनके पीछे अपने अंत:करण को प्रदूषित किये रहते हैं। भूत-प्रेत कहीं नहीं होते। बीती हुई मरी बातों की प्रतिक्रिया में चित्त डुबाये रखना भूतग्रस्त होना है। भूत है बीता हुआ। बीता हुआ मरा है। मरी बातों को पुन:-पुन: सोचना मुरदों में पड़कर सड़ना और नरक भोगना है। अतएव भूत की स्मृति और भविष्य की कल्पनाओं से अपने को मुक्त रखकर पवित्र विचारों एवं आत्मविचार में रहना परम सुख है।

अपनी चमक मद्धिम करो। तुम अपने को दुनिया में बड़े रूप में दिखाना चाहते हो, अपने को चमकाना चाहते हो कि तुम्हें लोग समझें कि तुम बड़े धनी,

1. बीजक, साखी 82।

बड़े विद्वान, बड़े पद वाले, बड़े ऐश्वर्य वाले, बड़े ज्ञानी, बड़े गुरु, जगद्गुरु, विश्वगुरु तथा ब्रह्मांडगुरु हो। ग्रंथकार कहते हैं कि यह सब भव-पंथ में जाना है। तुम अपने को बड़ा दिखाने का बालपन छोड़ दो। अपने को बड़ा दिखाने का विचार भोलापन, बालपन और थोड़ा कठोर कहें तो मूर्खता है। ''आया कबीरा फिर गया, झूठा है हंकार।''[1] सड़ी लाश लेकर ढो रहे हो, किस वस्तु का अहंकार है? विनम्रतापूर्वक आत्मशांति की साधना करो।

अपने को साधारण बनाओ। दूसरे लोगों की तरह तुम भी एक सामान्य मनुष्य हो। याद रखो, शरीर नकली चादर है और उससे जुड़े नाम, रूप, गुण, कर्म, पद, ऐश्वर्य सब जल बुदबुदेवत क्षणभंगुर एवं आभास मात्र हैं। तुम शरीर और शरीर संबंधी क्षणिक वस्तुओं में अपने को जोड़कर स्वयं को क्यों धोखा देते हो? अपना अस्तित्व तो आकृतिविहीन, शुद्ध चेतन मात्र है। उसमें किसी भौतिक वस्तु की गुंजाइश ही नहीं है। देखते-देखते देह के साथ सब कुछ छूट जाता है, फिर तुम किस वस्तु से अपने को जोड़कर असाधारण एवं विशेष बनते हो? सारी विशेषताएं आभासमात्र एवं झूठी हैं। तुम तो निर्विशेष शुद्ध चेतन हो, और व्यावहारिक दृष्टि से सामान्य मनुष्य हो।

यही है ताओ के साथ गुप्त साझेदारी। न बोलना, कम बोलना, इंद्रिय-मन पर पूर्ण नियंत्रण रखना, बुद्धि का प्रमाद छोड़कर बालवत सरल रहना, विचारों पर नियंत्रण रखना, अपने को बड़ा दिखाने की चेष्टा से दूर रहना और अपने को साधारण मानना तथा साधारण रखना, यही है विश्व-नियम के साथ अपना गुप्त संबंध स्थापित रखना। विश्व-सत्ता के नियम मौन होकर सब काम करते हैं, वैसे हम भी मौन होकर, दिखावा से रहित हो जीवन की नैतिकता से अपना संबंध स्थापित रखें। हम बाहर से लौटकर अपने भीतर से जुड़ें।

जो ऐसा कर लेता है, वह प्रेम से अप्रभावित रहता है। रुखेपन से भी प्रभावित नहीं होता। जो उपर्युक्त प्रकार से आत्मसंयत होता है, वह किसी के प्रेम-व्यवहार में उलझकर व्यामोहित नहीं होता। यदि कोई उससे रूखा एवं कड़वा व्यवहार करता है, तो उससे भी वह प्रभावित नहीं होता। ज्ञान की सच्ची स्थिति का अर्थ ही यही है कि कैसी भी अनुकूल-प्रतिकूल स्थिति आने पर आंदोलित न हो, अपितु सभी स्थितियों में समान भाव से निर्द्वंद्व, शांत एवं उद्वेग-शून्य रहे।

वह लाभ से प्रभावित नहीं होता, हानि से भी अप्रभावित रहता है। धन, पद, प्राणी, पदार्थ एवं लौकिक ऐश्वर्य को पाना लोग लाभ मानते हैं और इनका न मिलना अथवा मिलकर छूट जाना हानि मानते हैं। आत्मलीन मनुष्य इन सारी

1. बीजक, साखी 114।

वस्तुओं एवं उपलब्धियों को मृगमरीचिका की तरह आभास मात्र, दिखावा एवं क्षणभंगुर मानता है, जैसे कि वे हैं। इसलिए उसे इस जीवन में न कुछ लाभ रहा और न हानि रही। श्री विशाल साहेब कहते हैं, वस्तुत: बंधनों से छूट जाना लाभ है और बंधनों में बंधे रहना हानि है। इसके अलावा न हानि है, और न लाभ। यथा—

हानि लाभ निज जीव की, बंधन छूटन केरि।
ताहि छोड़ि कछु हानि नहिं, लाभ न कतहूँ हेरि॥

वह ऐश्वर्य से प्रभावित नहीं होता, और न ही दरिद्रता से प्रभावित होता है। जिसे आत्मिक ऐश्वर्य मिल गया है, वह बाहरी ऐश्वर्य से प्रभावित नहीं होता।

सब ऐश्वर्य नास्ति की माहीं।
जाके पीछे जिव बौराहीं॥

जो निरंतर ताओ के साथ रहता है, जीवन-नियम के अनुसार चलता है; जो देखता है कि समुद्र से लहरें उठती हैं और गिरकर उसी में विलीन होती हैं, वैसे सारे निर्मित पदार्थ मूल जड़-प्रकृति से निर्मित होते हैं और उसी में पुन: लीन होते हैं, वह किस वस्तु से प्रभावित हो? शरीर-निर्वाह के लिए तो बहुत थोड़ी वस्तुओं की आवश्यकता है। इसके अलावा सारा ऐश्वर्य केवल दिखावा है। उससे दूसरे का हित हो, यही अच्छा है। उसके प्रबंध में उलझन ही आने वाली है, और क्या लाभ है? बोधवान दरिद्रता से भी प्रभावित नहीं होता। दरिद्र का भी जीवन-निर्वाह चलता ही है। धन्य वह है जिसका मन सब तरफ से निर्मल और प्रसन्न है।

अतएव संसार में उसका ऐश्वर्य सबसे बढ़कर है। जो कहीं भी प्रभावित नहीं होता, अपितु अनुकूल तथा प्रतिकूल मानी गयी सभी परिस्थितियों में समतापूर्वक बरतता है, उसका ऐश्वर्य सर्वोच्च है। जिसका मन द्वंद्वहीन, निर्मल, निरंतर प्रसन्न और दुख-रहित है, वह सर्वोच्च ऐश्वर्य वाला है।

---

57. रुकें, दायित्व छोड़ें, कामना-शून्य हो जायें

1. *To rule a state one needs the art of government;*
   for the craft of arms one needs
   extraordinary talent.
   But in order to win the world
   one must be free of all busy-ness.

2. *How do I know that this is the world's way?*
   The more things there are in the world that one must not do,
   the more people are impoverished.
   The more people have sharp implements,
   the more house and state tumble into destruction.
   The more people cultivate art and cleverness,
   the more ominous signs arise.
   The more law and order are propagated,
   the more thieves and robbers there will be.

3. *Therefore, the Man of Calling says:*
   If we do nothing the people will change of themselves.
   If we love stillness
   the people right themselves of themselves.
   If we undertake nothing
   the people will become rich of themselves.
   If we have no cravings
   the people will become simple of themselves.

अनुवाद

1. *राज्य का शासन करने के लिए शासन की कला चाहिए।*
   अस्त्र-शस्त्रों में निपुणता के लिए विशेष योग्यता चाहिए।
   किंतु संसार को जीतने के लिए,
   प्रपंच-प्रवृत्ति से पूर्णतः मुक्त होना अनिवार्य है।